IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 4, Issue 1, April 2020
Impact Factor: 4.819

सैद्धान्तिक समीक्षा और आ. रामचन्द्र शुक्ल - 1

डॉ अजय कुमार बिन्द
असि. प्रो. हिंदी
राजकीय महाविद्यालय नानौता, सहारनपुर
drajaybind@gmail.com

सैद्धांतिक आलोचना साहित्य की विधा है जिसमें काव्य, नाटक या कला के मूल सिद्धांतों, नियमों और मानदंडों का निर्धारण किया जाता है। यह कृत के स्थान पर काव्यशास्त्रीय नियमों (रस, छंद,अलंकार आदि) पर ध्यान केंद्रित करती है और स्थापित सिद्धांत के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन करती है जिसे शास्त्रीय पक्ष भी कहा जाता है। हिन्दी के आधार स्तम्भ आलोचक आ. रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना पर विचार- विमर्श करने से पहले हम सभी को कुछ तथ्यों की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए जो समीक्षक शुक्ल के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं–आ.रामचन्द्र शुक्ल के आविर्भाव काल में भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन उत्कर्ष पर था और शुक्लजी उसकी गतिविधियों से निरपेक्ष नहीं थे। यह अलग बात है कि उनकी मानसिकता पर गाँधीजी से अधिक बाल गंगाधर तिलक का प्रभाव था। उनके आलोचना चिन्तन में 'गीता रहस्य' के अध्ययन का योगदान है।

शुक्लजी को हिन्दी आलोचना की कोई समृद्ध परम्परा नहीं मिली थी। अपितु उनके समक्ष भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का विशाल खजाना मौजूद था।जिनका शुक्लजी ने गहन अध्ययन किया था। उनके अध्ययन-मनन ने हिन्दी में मौलिक आलोचना पद्धति का विकास किया था। जब शुक्लजी लेखन कार्य में प्रवृत्त हुए तब तक हिन्दी का स्वरूप भी पूर्ण विकसित नहीं हुआ था और उन्हें हिन्दी को आलोचना की समृद्ध भाषा बनाना था। जो कठिन चुनौती थी।उनकी व्यक्तिगत और पारिवारिक परिस्थितियाँ बहुत जटिल और कष्टपूर्ण थीं, जिनका सामना करते हुए उन्हें अपना रचना-कार्य करना था। उक्त सभी तत्वों ने मिलकर आ.रामचन्द्र शुक्ल के आलोचक व्यक्तित्व का निर्माण किया। उनके गहन अध्ययन, चिन्तन, मौलिक प्रतिभा तथा जीवन संघर्ष ने उन्हें एक सम्पूर्ण आलोचक के रूप में स्थापित करने का कार्य किया।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

ISSN 2581-9429 IJARSCT

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 4, Issue 1, April 2020 Impact Factor: 4.819

आ.रामचन्द्र शुक्ल का लेखन समय 1900-1940 ई. तक फैला है। इस अवधि में राष्ट्रीय जन - मानस को प्रभावित करने वाली अनेक घटनाएँ घटित हुईं। तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से यह काल स्वतन्त्रता आन्दोलन, बाल गंगाधर तिलक के तेज़ संघर्ष, महात्मा गाँधी के उदय तथा सुभाषचन्द्र बोस द्वारा 'आजाद हिन्द फौज' के गठन का है।आ.शुक्ल के साहित्यिक कार्यों का प्रारम्भ एक प्रकार से काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हिन्दी-कोश योजना से हुआ था। उसके बाद 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सहायक सम्पादक नियुक्त हुए। समीक्षक शुक्ल की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ हमारे समक्ष हैं। उनका सैद्धान्तिक समीक्षा ग्रंथ 'रस मीमांसा' रस चिंतन के क्षेत्र में अपना प्रतिमान स्थापित कर चुका है। उनकी व्यावहारिक आलोचनाओं का प्रौढ़तम रूप 'तुलसी और जायसी' ग्रंथावली की भूमिकाओं, 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रकट हुआ है।शुक्लजी ने काव्य की सु व्यवस्थित विस्तृत आलोचना की है। इसके अतिरिक्त गद्य व अन्य विधाओं पर भी समीक्षा लिखी है। साहित्य विवेचन के अन्तर्गत आने वाले विधाओं के लिए डॉ. वेंकट शर्मा लिखते हैं– "शुक्लजी ने श्रव्य काव्य, दृश्य काव्य तथा कथात्मक गद्य काव्य के रूप में साहित्य क्षेत्र में आने वाली रचनाओं का विवेचन कर काव्यात्मक गद्य-प्रबंध या लेख तथा विचारात्मक निबंध या लेख के नाम से साहित्य के दो रूप और माने हैं।जिसका अभिप्राय यह है कि काव्य, नाटक, उपन्यास, गद्य काव्य तथा निबंध और समालोचना ये पाँच प्रमुख विषय साहित्य विवेचन के अन्तर्गत आते हैं।"[1]

आ. शुक्ल में मनुष्य की सत्ता और इहलौकिक जीवन के प्रति आग्रह है। उन पर जर्मनी के प्राणितत्व विज्ञानी हैकल की पुस्तक 'रिडल ऑफ द यूनिवर्स' का बहुत प्रभाव पड़ा था जिसका उन्होंने हिन्दी में अनुवाद 'विश्व प्रपंच' नाम से किया। यह अनात्मवादी ग्रंथ है। शुक्लजी की दृष्टि वैज्ञानिक, प्रगतिशील और इहलौकिक थी। आ.शुक्ल समकालीन राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर भी अपने स्पष्ट विचार रखते थे। वे अन्यायी शासन के प्रति राम के 'कालग्नि सदृश क्रोध' को उचित मानते थे। देश व विश्व की बदलती परिस्थितियों में आ.शुक्ल का प्रादुर्भाव हुआ।आ.शुक्ल नायक नायिका - भेद का साहित्य लिखने के पक्ष में नहीं थे। देश की तत्कालीन स्थिति उनके सामने थी। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार – "आ. शुक्ल कविता को जीवन जगत के यथार्थ से, मानव जीवन और प्रकृति से, समाज की वास्तविकता और इतिहास प्रक्रिया से जोड़कर विकसित होते देखना चाहते हैं। कविता के ऐसे विकास के लिए जीवन, जगत का ज्ञान और अनुभव आवश्यक है।"[2] आ. शुक्ल लोकमंगल की

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 4, Issue 1, April 2020 Impact Factor: 4.819

साधना करने वाले व वैसा ही साहित्य लिखने के पक्षधर थे। इसलिए वे प्रबंध काव्य व धीरोदात्त नायक के पक्ष में थे,जो समाज व देश की स्थिति व लोगों के विचारों पर गहरा प्रभाव डाल सके। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि – "आलोचना में 'लोक' शब्द को लोकप्रिय बनाने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। उनका 'लोक' शब्द बहुत व्यापक है...। रहस्यवादियों के प्रसंग में 'लोक' पूरा वस्तु जगत है और कलावादियों के सामने कर्मण्य मानव -जीवन, रीतिवादियों के विरुद्ध 'लोक' आम जनता है और व्यक्तिवादियों के विरुद्ध लोकवाद समाजवाद है (यहाँ समाजवाद का अर्थ सामाजिकता से आगे नहीं जाता)।"[3]

आ.शुक्ल द्वारा प्रयोग कि गयी पारिभाषिक शब्दावली अभिधान के स्तर पर तो भले पुरानी लगे किन्तु उसका अर्थ बहुत विकसित, परिवर्तित और व्यापक हो गया है। उसके भीतर परिस्थितियों के दबाव से नयी चेतना का सन्निवेश हो गया है। वस्तुतः शुक्लजी जगत की गति के अनुसार साहित्य के उत्तरोत्तर अन्तर्विकास में विश्वास करते थे। उनके द्वारा प्रयुक्त परम्परागत शब्दावली में यह अन्तर्विकास स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है।[4] शुक्लजी ने पारिभाषिक शब्दावली का स्वयं निर्माण किया तथा अंग्रेज़ी की शब्दावली के लिए हिन्दी में शब्दों का निर्माण किया।[साहित्य के सम्बन्ध में शुक्लजी के भौतिकवादी दृष्टिकोण को लक्षित करते हुए नन्दकिशोर नवल ने कहा है कि -"हिन्दी आलोचना को शुक्लजी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने साहित्य के सम्बन्ध में एक सुसंगत दृष्टिकोण के निर्माण का प्रयत्न किया। उनके इस दृष्टिकोण का आधार ज्ञान का भौतिकवादी सिद्धान्त है, जिसके अनुसार विचार ज्ञान और भाव का आधार यह भौतिक जगत ही है।"[5]

सन् 1921 ई. में आ. शुक्ल नें 'चिन्तामणि' में लिखा हैं कि –"बड़े-बड़े राज्य माल की बिक्री के लिए लड़ने वाले सौदागर हो गए हैं; अब सदा एक देश दूसरे देशों का चुपचाप दबे पाँव धन हरन करने की ताक में रहता है।... जब तक यह व्यापारोन्माद दूर न होगा तब तक इस पृथ्वी पर सुख-शान्ति न होगी।"[6] आ.शुक्ल साम्राज्यवाद के घृणित रूप से अच्छी तरह परिचित थे। इसके विरुद्ध संघर्ष का एक रास्ता, जैसा कि उन्होंने संकेत किया है टॉलस्टॉय के निष्क्रिय प्रतिरोध का था और दूसरा रास्ता समाजवाद का था। शुक्लजी ने 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' शीर्षक अपने प्रसिद्ध निबन्ध कविता पर विचार करने के क्रम में टॉलस्टॉय के रास्ते को एकमात्र सत्य के रूप में अस्वीकृत कर संघर्ष के दूसरे रूपों को भी स्वीकार करने पर बल दिया है।"[7] हिन्दी आलोचना को शुक्लजी ने शब्दावली के स्तर पर जितना समृद्ध किया उतना अन्य किसी समीक्षक ने नहीं किया।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 4, Issue 1, April 2020 Impact Factor: 4.819

आ.शुक्ल रसवादी आचार्य हैं। सूर, तुलसी और जायसी के काव्यों की समीक्षा रस-सिद्धान्त की कसौटी पर की गई है, उनका इतिहास का प्रणयन रस भूमि पर ही हुआ है। 'रस मीमांसा' रस सिद्धान्त का प्रतिपादक ग्रन्थ है तथा 'चिन्तामणि' के विविध निबन्धों में भी 'रस' की उपस्थिति दिखलाई पड़ती है। आ.शुक्ल ने रस की परिभाषित करते हुए कहा है -"लोक हृदय के हृदय में लीन होने की दशा का नाम रस दशा है। "8 आ.शुक्ल की परिभाषा में रस सिद्धान्त के नए दर्शन होते हैं। उनकी दृष्टि में रस भावक के मन की दशा की समान्यीकृत स्थिति भी नहीं है। बल्कि यह ब्यापक लोक भूमि पर प्रतिष्ठित जीवन मूल्य है। रस की अनुभूति के लिए आ. शुक्ल नें दो शर्ते अनिवार्य मानी है -" व्यक्तित्व की

भावना का परिहार तथा आलम्बन का हृदय मात्र के के साथ साधारणीकरण। "9 आ.शुक्ल द्वारा रस -दशा को हृदय की मुक्तावस्था मानने का कारण है कि वे साहित्य में ही नहीं प्रत्यक्ष जीवन की अनुभूतियों में भी रस देखते हैं। बस उनके लिए अनिवार्य लक्षण यह है कि जो को मुक्तावस्था में ला दे, उसे अपने-पराये के भाव से मुक्त कर दे, उसकी व्यक्ति सत्ता का परिहार कर उसे सामान्य भाव सत्ता में लीन कर दे तथा अशेष सृस्टि के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर दे।"10 वे काव्य सिद्धान्तों की शास्त्रीय सूक्ष्मता का विचार करने के पक्ष में नहीं हैं। वे मानते हैं कि–भाव का उत्कर्ष जहाँ दिखाया जाय उतनी ही सामग्री है। वे कहते हैं कि–"पूर्ण रस - योजना के लिए विभाव-अनुभाव-संचारी भावों को जबरदस्ती ढूँसना अनावश्यक है।"11 आ.शुक्ल ने रस की तीव्रता, कवि की तन्मयता, रस की विविधता तथा उसके विस्तार तथा रस वैविध्य पर भी दृष्टि डाली है।

काव्य के अन्तरंग भाव -तत्त्व को उन्होंने वरीयता दी है। भाव का विवेचन करते हुए शुक्लजी का कहना है कि–"सुख और दुःख की इन्द्रियज वेदना के अनुसार राग और द्वेष आदिम प्राणियों में प्रकट हुए। जिसने दीर्घ परम्परा के अभ्यास द्वारा वासना और प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ। रति, शोक, क्रोध, भय आदि पहले वासना रूप में थे। पीछे भाव बन गए। विविध वासनाओं की नींव पर ही भावों की प्रतिष्ठा हुई है।"12शुक्लजी ने सबसे पहले 'रस' को शास्त्र के आलंकारिक बन्धनों से मुक्त किया, उसे नई भूमि दी। शुक्लजी की यह भूमि वस्तुवादी थी। इसका अर्थ है कि शुक्लजी ने काव्य में विभाव पक्ष को प्रधानता दी है, भाव पक्ष को नहीं। वे काव्य में वस्तु पक्ष को ही प्रमुख मानते हैं, भाव निरूपण को उतना नहीं। शुक्लजी ने रस को शास्त्र के बाह्य शैलीगत उपकरणों से मुक्त कर उसे वस्तुगत भूमि पर पहुँचाया। डॉ. रामाधार शर्मा कहते हैं– "शुक्लजी की दृष्टि जीवन

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 4, Issue 1, April 2020 Impact Factor: 4.819

पर लगी हुई है, पर जीवन प्राय: बहिरंग योगिका है। जीवन के वाह्य वैविध्य, उसकी ऊपरी अनेक रूपता ही आकर्षण का प्रधान केन्द्र है। निश्चय ही शुक्लजी की दृष्टि जीवन और जगत् के व्यक्त या गोचर व्यापारों में ही रमती है, यह वस्तुपरक अधिक है।"13

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1.डॉ. वेंकट शर्मा-आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास, पृ. 263
2.मैनेजर पाण्डेय-आलोचना की सामाजिकता, पृ. 37
3.मैनेजर पाण्डेय-आलोचना की सामाजिकता, पृ. 43
4.डॉ. रामचन्द्र तिवारी-आधुनिक हिन्दी आलोचना : सन्दर्भ एवं दृष्टि, पृ. 39
5.नन्दकिशोर नवल- हिन्दी आलोचना का विकास, पृ. 101
6.आ.शुक्ल- चिन्तामणि भाग 3, पृ. 188
7.नन्दकिशोर नवल-हिन्दी आलोचना का विकास, पृ. 98
8.आ. शुक्ल-चिन्तामणि भाग-1, पृ. 227
9.आ.शुक्ल- चिन्तामणि भाग-1, पृ. 247, 250-252
10.आ.शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, 179
11.आ.शुक्ल- रस मीमांसा, पृ. 158
12.आ.शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 338, 139
13.डॉ. रामाधार शर्मा- हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा, पृ. 96